रस - निष्पत्ति एवं साधारीकरण

रसवादी आचार्य रस को काव्य की आत्मा मानते हैं। रस तत्त्व की सत्ता का उदय तो भारतीय काव्य के समभ्युदय के साथ ही हुआ था। रस जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व है। लोक में प्रचलित खाद्य पदार्थों में लवण, तिक्त, मधुर, कषाय इत्यादि तथ संगीतिक रस, आयुर्वेदिक रस इत्यादि जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व हैं। आध्यात्मिक जगत हो या लौकिक जगत रस से रहित जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। जिस प्रकार नाना पदार्थों से तैयार किए हुए व्यंजन से रस की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार अनेक प्रकार के भावों से रस की निष्पत्ति होती है।

आचार्य भरत के रससूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। रस - निष्पत्ति पर अनेक आचार्यों ने अपने विचार प्रकट किए हैं, जो भरत के रस रससूत्र पर ही आधारित हैं। भरत के सूत्र में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव का स्वरूप समझना आवश्यक है। वे व्यक्ति या पदार्थ जो भावोत्तेजना के मूल कारण हैं, विभाव कहलाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं - आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव। आलम्बन विभाव वे हैं जिसका आलम्बन लेकर रति, हास, क्रोध आदि भाव से जाग्रत होते हैं। उद्दीपन विभाव वह है जिन वस्तुओं या स्थिति को देखकर रति आदि स्थायीभाव तीव्र या उद्दीप्त होते हैं।

स्थायीभाव के उदय होने के पश्चात जो शारीरिक विकार दिखाई देते हैं वे अनुभाव कहलाते हैं। व्यभिचारी भाव स्थायीभाव के विपरीत होते हैं। स्थायीभावों के सहकारी के रूप में विद्यमान होते हैं। इस प्रकार विभावानुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से जो आनन्द प्राप्त होता है या रस - चर्वणा होता है, उसे रस

कहते हैं।

रस-निष्पत्ति विषयक विभिन्न मत —

प्रथम मत : भट्टलोल्लट का मत —

उत्पत्तिवाद के उद्भावक मीमांसक भट्टलोल्लट 'संयोग' शब्द का अर्थ सम्बन्ध तथा 'निष्पत्ति' शब्द का अर्थ उत्पत्ति करते हैं। इनके मत के अनुसार विभावादि कारण हैं और रस, कार्य। इनके मत के अनुसार मूल की स्थिति ऐतिहासिक पात्र नायक राम आदि में मानी है। विभिन्न वेशभूषा द्वारा नट उनका अभिनय करते हैं। इसलिए इसका आरोप नट में किया जाता है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस उत्पत्ति होती है।

यह मत जिज्ञासुओं की समस्त जिज्ञासाओं का समाधान न कर सकने के कारण मान्य नहीं हुआ। विभाव और अनुभाव के साथ ही रस की उत्पत्ति होती है और उनके अदृश्य होते ही रस भी अदृश्य नहीं होता है। अतः विभावादि कारण तथा कार्य का सम्बन्ध स्पष्ट नहीं है। इस मत में अनेक शंकायें हैं, उनका समाधान अपेक्षित है।

द्वितीय मत : आचार्य शंकुक का मत —

अनुमितिवाद के उद्भावक आचार्य शंकुक ने भरत की 'निष्पत्ति' को 'अनुमिति' तथा 'संयोग' को 'अनुमाप्य-अनुमापक' मानकर विभावादि को अनुमापक तथा रस को अनुमाप्य माना है। "चित्रतुरगादि न्याय" की इनकी विवेचना के अनुसार नट सच्चे राम नहीं हैं वे चित्र में लिखे अश्व की तरह हैं। जैसे अश्व के चित्र को देखकर अश्व का अनुभव होता है वैसे नट के अभिनयात्मक रूप को देखकर सहृदयों को राम का अनुभव होता है।

श्रीशंकुक का अनुमितिवाद भी जिज्ञासुओं की समस्त जिज्ञासाओं का समाधान न कर सका, क्योंकि अनुमान से वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता।

Scanned with CamScanner

तृतीय मत : भट्टनायक का मत —

सांख्यमतानुयायी भुक्तिवाद के उद्भावक भट्टनायक ने 'संयोग' का अर्थ भोज्यभोजक सम्बन्ध तथा 'निष्पत्ति' का अर्थ 'भुक्ति' लिया है। भट्टनायक ने रस की स्थिति प्रेक्षक के हृदय में स्वीकार किया है। इनके अनुसार रस की अनुभूति नट इत्यादि में नहीं होती बल्कि केवल दर्शक को ही होती है। भट्टनायक के इस मत में स्थायी भाव से लेकर रस की उत्पत्ति तक काव्य की तीन शक्तियाँ — अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व है। इसमें से अभिधा के द्वारा काव्यगत सामान्य अर्थ का ज्ञान होता है। भावकत्व द्वारा प्रेक्षक और पाठक का हृदय वैयक्तिक सम्बन्धों को छोड़ कर साधारण मनुष्य की भावभूमि पर आ जाता है और यही विशेष रहित मन नाटक में ~~प्रदर्शित~~ प्रदर्शित भाव का आस्वाद होता है। इस प्रकार स्थायीभाव सहृदय भाव के द्वारा उपभोग्य हो जाता है। इस स्थिति का नाम रस है। रजस् - तमस विहीन सात्विक मन ही काव्य - रस का मौका बनता है। यही भोजकत्व व्यापार है।

इस मत पर आक्षेप किया जाता है कि इन नवीन काव्य शक्तियों को मानने का शास्त्रीय आधार क्या है। दूसरा आक्षेप यह भी है कि आचार्य भट्टनायक द्वारा निर्दिष्ट स्थायीभाव का भोग दुष्यन्त-शकुन्तलागत स्थायी भाव है या अनुकर्ता का या सामाजिक का। इन दोषों के होने पर भी एक महत्वपूर्ण तथ्य का इस मत में उद्घाटन हुआ है — इसमें प्रेक्षक-दर्शक की समस्या का समाधान हुआ है। ~~इसमें~~ भट्टनायक ने रस की स्थिति दर्शक के हृदय में मानी है, यह सर्वथा उचित है।

चतुर्थ मत : अभिनवगुप्त का मत —

वेदान्त मतानुयायी अभिव्यक्तिवाद के प्रतिष्ठाता अभिनवगुप्त के अनुसार

'संयोग' का अर्थ 'व्यंग्य व्यंजक सम्बन्ध' तथा 'निष्पत्ति' का अर्थ अभिव्यक्ति है। अभिनवगुप्त आवकत्व तथा भोजकत्व नामक शक्तियों का कार्य व्यंजना या ध्वनि द्वारा ले लेते हैं। क्योंकि रति आदि स्थायी भाव पाठक के अन्तःकरण में वासना या संस्कार के रूप में रहते हैं। ये विभावादि के संयोग से अभिव्यक्त होते हैं। रस में भोग या आस्वाद तत्व पहले से ही विद्यमान रहता है। इसलिए वह रस है — 'आस्वाद्यत्वाद्रसः'। अभिनव के मतानुसार, काव्य हमारी भावाभिव्यक्ति का साधन मात्र है। उन्होंने सामाजिक के हृदयस्थित स्थायी भाव को रसानुभूति का निमित्त कारण माना है, जो बीज रूप में मानव मन में रहते हैं। ये स्थायी भाव ही साधारणीकृत होकर प्रेक्षक को ब्रह्मानन्दसहोदर आनन्द रस में निमग्न कर देते हैं।

उपर्युक्त समस्त विवेचन निष्कर्ष स्वरूप स्पष्ट है कि जितना अधिक वैज्ञानिक एवं ग्राह्य सिद्धांत अभिनवगुप्त का है उतना अन्य आचार्यों का नहीं। अभिव्यक्तिवाद के अतिरिक्त अन्य सभी वाद अपने में अपूर्ण हैं क्योंकि भट्टलोल्लट ने मुख्य रूप से तटस्थ दुष्यन्त में गौण रूप से नट में रस की उत्पत्ति मानी है। सामाजिक का स्थान उपेक्षित है। द्वितीय मत मुख्य रूप से नायक में और गौण रूप से नट में रस की अनुमिति को मानता है और इसी अनुमिति के द्वारा सामाजिक को रसानुभूति का प्रतिपादन किया गया है। परन्तु अनुमिति तो केवल परोक्ष ज्ञान स्वरूप है, साक्षात्कात्मक अनुभूति की समस्या का समाधान उसके द्वारा संभव नहीं। अतः यह मत भी समीचीन नहीं है। भट्टनायक ने समस्या का समाधान अनुकार्य और अनुकर्ता को तटस्थ एवं उदासीन मानकर किया तथा वे वास्तविक रसानुभूति सामाजिक में स्वीकार करते हैं किन्तु दो नवीन शक्तियों की कल्पना कारण इनका मत भी अस्वीकार्य हुआ। अभिनवगुप्त ने अभिव्यक्तिवाद के द्वारा समस्या का समाधान किया है और सामाजिक के